गेहूँ एवं जौ संदेश

वर्ष 6 | अंक 1 | जनवरी–जून, 2017

जलवायु परिवर्तन का गेहूँ की गुणवत्ता पर प्रभाव

वनिता पाण्डेय, स्नेह नरवाल, ओम प्रकाश गुप्ता, सेवा राम, रिंकी,
अंकिता झा, अनुज कुमार एवं आर.के. गुप्ता

भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

कृषि एक ऐसा क्षेत्र है जो मौसम और जलवायु से अत्यधिक प्रभावित रहता है। वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड तथा तापमान दोनों ही पौधों के विकास को प्रभावित करते हैं और हाल के समय में दोनों ही बदल रहे हैं तथा आगे भी बढ़ने की भविष्यवाणी की जा चुकी है। औद्योगिक क्रान्ति के बाद से कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा 270 से बढ़कर 380 μ mol mol^{-1} हो चुकी है तथा उसमें 1.5 से 1.8 μ mol mol^{-1} प्रति वर्ष की दर से निरंतर वृद्धि हो रही है। यह अनुमान लगाया जा रहा है कि सन् 2050 तक कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा 470 से 570 μ mol mol^{-1} तक हो जाएगी। वायुमंडल मे कार्बन डाइऑक्साइडके बढ़ते स्तर ने तापमान में वृद्धि, वर्षा के स्वरूप में बदलाव, शीतकाल के तापमान में वृद्धि तथा समुद्र तल के स्तर में वृद्धि जैसी समस्याओं को उत्पन्न किया है। गेहूँ, भारत तथा विश्व की प्रमुख फसलों में गिना जाता है तथा इसकी खेती सर्दियों में ही की जाती है, जब शीतकालीन तापमान में वृद्धि की सम्भावना सबसे अधिक होती है। वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइडकी वृद्धि के फलस्वरुप तापमान की वृद्धि गेहूँ के विकास को प्रभावित करती है जिस कारण दानों की गुणवत्ता को नुकसान हो सकता है। जलवायु परिवर्तन के गेहूँ उत्पादन पर प्रभाव के अधिकतर अध्ययन उपज से ही सम्बंधित हैं। दूसरा प्रभाव जो कि उतना ही महत्वपूर्ण है परन्तु उसका अध्ययन कम किया गया है, वह है जलवायु परिर्वतन का गेहूँ की गुणवत्ता पर प्रभाव। गेहूँ की गुणवत्ता को मुख्यतः प्रोटीन या स्टार्च की मात्रा से मापा जाता है, जिसमें स्टार्च की गुणवत्ता को 'आटे की गुणवत्ता' या 'लोफ आयतन' से मापा जाता है। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है, जिसमें वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड का बढ़ता हुआ स्तर तथा बढ़ता हुआ तापमान है।

कार्बन डाइऑक्साइड का गेहूँ की गुणवत्ता पर प्रभाव

बढ़ते हुए कार्बन डाइऑक्साइडके स्तर को गेहूँ की उपज बढ़ाने का श्रेय दिया जाता है परन्तु इसका कारण अधिक दानों का विकास है न कि वजनी दाना। कार्बन डाइऑक्साइडसमृद्ध वातावरण के गेहूँ में प्रोटीन की मात्रा में मुख्यतः कमी पाई जाती है। ब्रेड की गुणवत्ता मुख्यतः ग्लूटेन की मात्रा, मजबूती एवं खिंचाव पर निर्भर करती है। भंडारण प्रोटीन के दो मुख्य वर्गों (ग्लूटेन और ग्लॉयडीन) के अनुपात एवं गुण अनाज प्रसंस्करण गुणवत्ता के लिए जिम्मेदार है। विशेष रूप से ग्लॉयडीन आटे के लसीलेपन और खिंचाव शक्ति तथा ग्लूटेनिन आटे की मजबूती से सम्बंध रखते हैं। ग्लॉयडीन और ग्लूटेन के अनुपात तथा बड़े ग्लूटलिन बहुरन्पकों के समानुपात का आटे की मजबूती के संकेतक के रूप में व्यापक इस्तेमाल होता है तथा ग्लायडीन और ग्लूटेन की मात्रा पर कार्बन डाइऑक्साइड के बढ़ते हुए स्तर का प्रतिकूल प्रभाव होता है। कार्बन डाइऑक्साइडके स्तर में वृद्धि के कारण गेहूँ के दानों में 9 से 14 प्रतिशत तक कमी पाई गई है। समान परिस्थिति

गेहूँ में पाए जाने वाले विभिन्न पोषक तत्वों की मात्रा

पोषक तत्व	इकाई	मात्रा (प्रति 100 ग्राम)
प्रोटीन	ग्राम	11.31
कार्बोहाईड्रेट	ग्राम	75.90
वसा	ग्राम	1.71
रेशा	ग्राम	12.20
कैल्शियम	मिलिग्राम	32.00
आयरन	मिलिग्राम	4.56
फॉस्फोरस	मिलिग्राम	355.00
मैगनीशियम	मिलिग्राम	93.00
पोटैशियम	मिलिग्राम	432.00
सोडियम	मिलिग्राम	2.00
जिंक	मिलिग्राम	3.33

में ग्लॉयडीन में 15–20 प्रतिशत तथा ग्लूटेनिन में 15 प्रतिशत तक कमी देखी गई है। इसलिए उच्च कार्बन डाइऑक्साइड वातावरण में उगाए गए गेहूँ के दानों की बेकिंग गुणवत्ता कम होती है। कार्बन डाइऑक्साइडके बढ़ते स्तर के कारण स्टार्च की मात्रा में बढ़ोत्तरी पाई गई है जिसका कारण स्त्रोत (पत्तियों और तने) से सिंक (दानों) में कार्बोहाइड्रेट के स्थानांतरण का बढ़ना है। साथ ही कुल और गैर–स्टार्च लिपिड की सघनता में क्रमशः 7 प्रतिशत और 11.5 प्रतिशत कमी पाई गई तथा स्टार्च लिपिड में 3.2 प्रतिशत बढ़ोत्तरी पाई गई। ब्रेड की गुणवत्ता में लिपिड्स का महत्वपूर्ण योगदान है, हालांकि गेहूँ में यह केवल 1.5–3.5 प्रतिशत ही होते हैं। लिपिड, स्टार्च के कणों तथा ग्लूटेन प्रोटीन से निकटता से जुड़े होते हैं तथा ग्लूटेन में ग्लॉयडीन और ग्लूटेनिन को तथा ग्लूटेन को स्टार्च से बाँधे रखने में लिपिड का महत्वपूर्ण योगदान है। इनकी मात्रा में बदलाव का ब्रेड की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव होता है। गेहूँ में बढ़ती उपज तथा प्रोटीन की मात्रा के बीच प्रतिकूल सहसम्बंध पाया गया है। जिस के कारण भविष्य में कार्बन डाइऑक्साइड के बढ़ते स्तर से स्टार्च आधारित उद्योगों को लाभ तथा प्रोटीन सम्बंधित उद्योगों को हानि उठानी पड़ सकती है।

गेहूँ के दानों में अधिकांश पोषक तत्व दानों के भरने के दौरान वनस्पति कोष से पुनर्वितरण द्वारा उत्पन्न होते हैं। कार्बन डाइऑक्साइड सम्वर्धन, दानों में सूक्ष्म और दीर्घ तत्वों की सांद्रता में परिर्वतन का कारण है, जिसके फलस्वरूप दानों की पोषक महत्ता कम हो जाती हैं। मुख्य पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, पोटाशियम, फास्फोरस, सोडियम, कैल्सियम, मैग्नेशियम और सल्फर की सांद्रता में कमी सभी गेहूँ की किस्मों में समान पाई गई है। सूक्ष्म तत्व जैसे आयरन, जिंक और मैंग्नीज की सांद्रता में मुख्य रूप से कमी पाई गई है। विश्व की अधिकांश जनसंख्या पहले से ही सूक्ष्म तत्वों के कुपोषण से ग्रसित है तथा बढ़ते हुए कार्बन डाइऑक्साइडके कारण कुपोषण में और वृद्धि की आशंका है। इसका मुख्य कारण कार्बोहाईड्रेट की बढ़ती हुई मात्रा है जिस कारण पोषक तत्वों की मात्रा में तनुकरण हो रहा है।

गेहूँ की गुणवत्ता पर बढ़ते हुए तापमान का प्रभाव

बढ़ते तापमान के कारण गेहूँ में परिपक्वता दर में वृद्धि हो जाती है जिस कारण प्रोटीन की मात्रा और स्टार्च कणों के अनुपात में भी वृद्धि हो जाती है, जिससे प्रोटीन की संरचना तथा आटे की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है। तापमान में 15°c से 30°c तक की वृद्धि से आटे की मजबूती में मामूली वृद्धि होती है परन्तु तापमान में अतिरिक्त वृद्धि से आटे की मजबूती में काफी नुकसान होता है। जिस कारण लोफ आयतन तथा मिक्सिंग समय में कमी पाई गई है और ब्रेड की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। गेहूँ के ग्लॉयडीन घटक तापमान से अत्यधिक प्रभावित होते हैं जिससे ग्लूटेनिन और ग्लॉयडीन के अनुपात और बड़े ग्लूटेनिन बहुरन्पकों के अनुपात में कमी आ जाती है तथा ब्रेड की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

निष्कर्ष

वैश्विक जलवायु परिवर्तन से न केवल उपज बल्कि गेहूँ के दानों के संयोजन एवं संरचना पर भी प्रभाव पड़ता है। यह परिवर्तन गेहूँ के उपयोग और अन्त उत्पाद के उत्पादन की गुणवत्ता के लिए अनुचित है तथा बेकिंग और चपाती बनाने की गुणवत्ता को प्रभावित कर उसकी उपयोगिता को कम कर देता है। अतः अनुसंधान का लक्ष्य केवल उपज नहीं बल्कि बदलते जलवायु परिवेश के अनुरूप किस्मों की पहचान और विकास करना होना चाहिए जिसमें गेहूँ के अन्त उत्पादों और दानों की गुणवत्ता पर जलवायु परिवर्तन का न्यूनतम प्रभाव रहे।

कीटों को पकड़ने अथवा निगरानी के लिए विभिन्न ट्रैप (जाल)

पूनम जसरोटिया, प्रेम लाल कश्यप एवं सुधीर कुमार

भा.कृ.अनु.प.– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान करनाल

कीटों को पकड़ने के लिए विभिन्न प्रकार के ट्रैप या जाल का प्रयोग किया जाता है, जैसे कि लाईट, चिपचिपा और फेरोमोन ट्रैप (जाल)। इनका उपयोग प्रायः कीड़ों की संख्या पर निगरानी के लिए किया जाता है, लेकिन कुछ जाल का प्रयोग कीटों को नियंत्रित करने के लिए भी किया जा सकता है। जाल की क्षमता आंशिक रूप से कीड़ों की गतिशीलता एवं अवस्था पर निर्भर करती है। इसलिए जाल का प्रयोग वयस्क कीड़ों को पकड़ने में ज्यादा प्रभावी होता है।

जब ट्रैप (जाल) का प्रयोग कीड़ों की संख्या पर निगरानी के लिए किया जाता है, तब यह मुख्यतः एक कीट प्रजाति के फैलने की भविष्यवाणी करने में सहायता करता है। जाल में फंसे हुए एक कीट प्रजाति में अचानक वृद्धि हमेशा उसके अधिक प्रकोप होने के संकेत नहीं देती है। किसानों को जाल से मिली कीट संख्या की जानकारी के साथ अन्य टिप्पणियों को संयोजन करने के बाद ही फसल प्रबंधन के निर्णय लेने चाहिएं। किसानों को कीट संख्या एवं इसके जीवन चक्र के बारे में अपनी समझ को बढ़ाने के लिए कीट जाल का उपयोग अपने खेत में करना चाहिए। जब जाल कीटों को नियंत्रित करने के लिए एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा हो, उस समय किसानों को यह जानकारी होनी चाहिए कि जाल क्षमता खेत में कीट संख्या घनत्व से सम्बंधित है।

शोधकर्ता एवं प्रगतिशील किसान कीड़े पकड़ने के लिए कुछ जाल का इस्तेमाल करते हैं जैसे चिपचिपा जाल, प्रकाश जाल और फेरोमोन जाल। खेतों में कीट जाल के अलावा चूहों को पकड़ने के लिए अन्य प्रकार के ट्रैप (जाल) का उपयोग भी किया जाता है।

पीला चिपचिपा जाल

कीड़ों की कुछ प्रजातियाँ जैसे कि चेपा, सफेद मक्खी, कुछ पतंगों की प्रजातियाँ पीले रंग से आकर्षित होती हैं। ऐसी प्रजातियों के कीड़ों को पकड़ने लिए पीला चिपचिपा ट्रैप (जाल) का उपयोग लाभकारी है। अगर एक पीले रंग का कार्ड खेत में रखा जाए तो उस पर उड़ने वाले कीड़े आकर बैठने का प्रयास करेंगे और कार्ड पर चिपचिपा गोंद से चिपक कर मर जाएंगे।

पीला चिपचिपा जाल दिन में उड़ने वाले कीड़ों की जनसंख्या घनत्व की निगरानी के लिए प्रभावी है। इन ट्रैप (जाल) का उपयोग कीड़ों के नियंत्रण के लिए भी किया जा सकता है, लेकिन उसके लिए खेत के अंदर जाल को एक बड़ी संख्या में रखने की आवश्यकता है। इसके साथ पीला चिपचिपा जाल निश्चित रूप से हानिकारक कीड़ों के अतिरिक्त, लाभप्रद कीड़ों (ततैया, मक्खियों) को भी आकर्षित करेंगे।

पीला चिपचिपा जाल

यहाँ ध्यान देना होगा कि लाभप्रद कीड़ों की बड़ी संख्या जाल में न आए। ऐसी स्थिति में यह जाल अधिक उपयोगी नहीं होंगे।

प्रकाश जाल

प्रकाश जाल (लाइट ट्रैप) रात में उड़ने वाले कीड़ों को प्रकाश स्त्रोत की मदद से अपनी और आकर्षित करता है और एक विशेष रूप से पतंगों की कुछ प्रजातियों को पकड़ने एवं उनकी बढ़ती संख्या पर नजर रखने के काम आता है। प्रकाश जाल एक कम लागत में बनाया गया कीड़ों को पकड़ने वाला यंत्र है। इस ट्रैप (जाल) से प्रकाश से आकर्षित होने वाले सभी नर एवं मादा कीड़ों को पकड़ा जा सकता है। जाल में पतंगों का पाया जाना, किसान को संकेत देता है कि खेत में कीड़ों के अण्डे या कैटरपिलर को खोज करने का समय आ गया है। लाइट ट्रैप (जाल) को बनाने के लिए विभिन्न प्रकाश स्त्रोतों जैसे बिजली के बल्ब अथवा तेल लैम्प का इस्तेमाल किया जा सकता है। काले प्रकाश देने वाले ट्रैप विकसित किए गए हैं जिनमें काले रंग या यू.वी. लाइट लगाई जाती है और यह ट्रैप (जाल) कीड़ों को पकड़ने में लाभकारी सिद्ध होते हैं। इसके अलावा कम लागत वाले सौर उर्जा

प्रकाश जाल

फेरोमोन डेल्टा जाल

एवं बैट्री द्वारा संचालित ट्रैप (जाल) के मॉडल भी बाजार में उपलब्ध हैं। प्रकाश स्त्रोतों के अतिरिक्त कीटों को मारने के लिए प्रकाश स्त्रोत के नीचे बर्तन (गैलन, कैन या बर्तन) रखा जाता है, और उसके अंदर डिटर्जेंट का घोल डाला जाता है, ताकि कीड़े एक बार उस घोल में गिरने के बाद उड़ न सकें। प्रकाश जाल को फसल के मध्य में एक जाल प्रति हैक्टर की दर से लगाया जाता है। प्रकाश जाल को सूर्य अस्त के बाद दो घंटे तक चला कर रखने से कीड़ों की बढ़ी हुई संख्या को नियंत्रित किया जा सकता है।

फेरोमोन जाल

फेरोमोन जाल को एक प्रलोभन ट्रैप (जाल) की तरह प्रयोग में लिया जाता है, जिसमें तरल पदार्थ (फेरोमोंस) का इस्तेमाल कुछ कीड़े (विशेष रूप से पतंगों) को आकर्षित करने के लिए किया जाता है। आमतौर पर इन ट्रैप्स (जाल) में एक चिपचिपी सतह का उपयोग कीड़ों को पकड़ने के लिए किया जाता है, लेकिन कुछ ट्रैप्स (जाल) में कीड़ों को पकड़ने के लिए पानी या अन्य तरल पदार्थ से भरे बर्तनों का भी उपयोग किया जाता है। फेरोमोन जाल का मुख्य उदाहरण है "डेल्टा–ट्रैप" जो प्लास्टिक से बना त्रिकोणीय जाल है जिस पर मौसम का कोई प्रभाव नहीं होता। फेरोमोन ट्रैप (जाल) में अधिकांश फेरोमोन 'सेक्स फेरोमोंस' होते हैं जो मादा पतंगों द्वारा उत्पादित रसायनों के द्वारा नर पतंगों को आकर्षित करते हैं। परिणामस्वरूप जाल केवल एक प्रजाति के पुरूष पतंगों को पकड़ने में काम आता है। अन्य प्रजाति के पतंगों को पकड़ने के लिए अलग–अलग फेरोमोन का इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए फेरोमोन जाल एक विशिष्ट कीट प्रजाति की निगरानी के लिए बहुत उपयोगी होते हैं और अकसर कम जनसंख्या घनत्व का पता लगाने में काफी लाभकारी सिद्ध होते हैं। हालांकि, यह ट्रैप (जाल) कीट नियंत्रित करने के लिए अधिक उपयोगी नहीं है एवं रसायन फेरोमोंस अकसर महंगे होते हैं और आसानी से उपलब्ध नहीं होते। लेकिन दूसरी ओर, इनका लाभ यह है कि यह केवल हानिकारक कीटों को आकर्षित करते हैं और लाभप्रद कीड़ों पर इनका कोई प्रभाव नहीं होता।

कीट जाल से लाभ

1. कीट जाल कीड़ों को पकड़ने एवं पहचान, प्रबंधन और नियंत्रण योजना विकसित करने में मदद करते हैं।
2. इन ट्रैप्स (जाल) को खेत में लगाना आसान है एवं एक जगह से दूसरी जगह आसानी से ले जाया जा सकता है।
3. इनके उपयोग से कीटनाशकों पर व्यय तथा उनके आवेदन में कमी होगी एवं जैव विविधता में वृद्धि होगी, और रासायनिक कीट प्रबंधन की लागत में कमी होगी।
4. यह जाल टिकाऊ है एवं कम लागत में बनाए जा सकते हैं तथा साल दर साल कीड़ों को पकड़ने एवं निगरानी रखने के काम आ सकते हैं।

अनाज भंडारण में साइलोज की भूमिका

पूनम जसरोटिया, राज कुमार, प्रेम लाल कश्यप एवं सुधीर कुमार
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

'साइलो' शब्द यूनानी मूल के शब्द "सिरोस" से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है अनाज रखने के लिए एक संरचना जिसमें अनाज को अधिक मात्रा या थोक में संग्रहीत किया जा सके । कृषि में साइलोज का उपयोग अनाज को भंडारण करने या किण्वित फीड को साइलोज के रूप में किया जाता है। इसके अतिरिक्त कोयला, सीमेंट, कार्बन ब्लैक, लकड़ी एवं खाद्य उत्पादों व चूरा के थोक भंडारण के लिए साइलोज का इस्तेमाल किया जाता है । आजकल तीन प्रकार के साइलोज व्यापक उपयोग में हैं टावर, बंकर एवं बैग।

खाद्य सुरक्षा के लिए अनाज एवं बीज के सुरक्षित भंडारण की महत्वपूर्ण भूमिका है । भंडारण के दौरान अनाज व बीज को अधिकतम हानि कीटों द्वारा होती है। नमी की अधिक मात्रा तथा फफूंद से भी अनाज एवं बीज को नुकसान पहुँचता है । भंडारण कीटों की लगभग 50 प्रजातियाँ हैं जिनमें से करीब आधा दर्जन प्रजातियाँ ही आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । यदि अनाज कीट से मुक्त और उसमे नमी की मात्रा सुरक्षित दर से नीचे है, तो ऐसी स्थिति में अनाज को कई वर्षों तक बिना किसी नुकसान एवं गुणवत्ता या बिना पोषण सम्बंधी कमी के रखा जा सकता है । भंडारित अनाज में कीट गतिविधि को कम करने एवं पोषण सम्बंधी गुणवत्ता बनाए रखने में कम तापमान की महत्वपूर्ण भूमिका है । अगर तापमान अधिक हो और नमी की मात्रा सुरक्षित स्तर से ऊपर है और उसके साथ कीड़े भी मौजूद हों तो ऐसी परिस्थिति में अनाज का भंडारण जोखिम भरा एवं कठिन हो जाता है। निश्चित रूप से इस स्थिति में अधिक नुकसान होगा और नुकसान से बचना काफी मुश्किल होगा । इन परिस्थितियों में भंडारित अनाज की सुरक्षा के लिए भंडारण की सुविधा का प्रकार एवं इसके डिजाईन की महत्वपूर्ण भूमिका है । हालांकि भंडारण डिजाइन में विस्तृत विविधता है, लेकिन अनाज को सुरक्षित रूप से भंडारित करने के लिए जरूरी आवश्यकताएं एक समान हैं । जैसे कि भंडारण संरचना में पानी का प्रवेश, कीड़े, कृन्तकों एवं पक्षियों से अनाज को मुक्त रखने का प्रावधान होना चाहिए। यदि किसी कारण से अनाज में नमी की मात्रा सुरक्षित स्तरों से ऊपर चली जाए तो संग्रहित अनाज को ठंडा करने के लिए प्रावधान होना चाहिए। कीट प्रकोप की स्थिति में भंडारण संरचना में कीट नियंत्रण के लिए आसान और श्रेष्ठ सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए ।

साइलोज भंडारण के लाभ

1. इस पद्धति का सबसे बड़ा फायदा यह है कि गोदामों की तुलना में साइलोज कम जगह में बन जाते हैं । यह विशेष रूप से, समुद्र और शुष्क बंदरगाहों पर महत्वपूर्ण हैं, जहां पर भंडारण के लिए बड़ी जगह उपलब्ध नहीं होती है ।
2. गोदामों की तुलना में, साइलोज में अनाज भंडारण की अनुकूलतम स्थिति को बनाए रखना आसान है । साइलोज में तापमान को नियंत्रित करने के लिए बेहतर सुविधा होती है । पक्षियों, कीड़ों एवं फफूंद से बचने के उपाय किए गए होते हैं ।

साइलोज

3. साइलोज की कीमत गोदामों की तुलना में बहुत कम है और यह उन कम्पनियों और किसानों के लिए एक शानदार विकल्प है जो अनाज को थोक में भंडारण करना चाहते हैं । साइलोज में स्वचालित अनाज परिवहन प्रणाली होती है जिसमें सभी लोडिंग और अनलोडिंग प्रक्रियाएं स्वचालित पद्धति द्वारा की जाती हैं ।
4. साइलोज को पूर्ण तापमान नियंत्रण और वेंटिलेशन सिस्टम से लैस किया जा सकता है, जो अनाज को उचित परिस्थितियों में रखरखाव की गारंटी देता है। लेकिन बैग या गोदाम में यह सम्भव नहीं है, इसलिए वे लम्बे समय तक के भंडारण के लिए उपयुक्त नहीं हैं।
5. एक बैग अकसर 200 टन से बड़ा नहीं होता है, इनको रखने के लिए एक बड़े भूमि क्षेत्र की आवश्यकता होती है, जबकि साइलोज, उनके उर्धवाधर व्यवस्था के कारण, बहुत छोटे भू–क्षेत्र में अधिक भंडारण क्षमता रखते हैं।

निष्कर्ष

साइलोज में अनाज का भंडारण एक नया विचार नहीं है, लेकिन यह हाल ही में लोकप्रिय अनाज भंडारण समाधानों में से एक बन गया है। गोदामों की तरह ही, इनमें अनाज का लम्बी अवधि के लिए भंडारण किया जा सकता है, लेकिन इनमें भंडारण की कीमत बहुत कम है ।

माल्ट जौ की नवीन किस्मः डी.डब्ल्यू.आर.बी. 123

विष्णु कुमार, अजित सिंह खरब, आर.पी.एस.वर्मा, दिनेश कुमार एवं जोगेन्द्र सिंह
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

डी.डब्ल्यू.आर.बी. 123 द्विपंक्ति माल्ट जौ की एक नवीन किस्म है, जिसे संकरण एवं पादप चयन विधि के माध्यम से डी.डब्ल्यू.आर.यू.बी. 54 एवं डी.डब्ल्यू. आर. 51 प्रजनकों द्वारा भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल में तैयार किया गया। डी.डब्ल्यू. आर.बी. 123 को चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार में आयोजित 55वीं गेहूँ एवं जौ अनुसंधान कार्यशाला के दौरान चिन्हित किया गया एवं इसके बाद सी.वी.आर.सी. की 76वीं बैठक में इसे उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र की सिंचित एवं समय से बिजाई पारिस्थितिकी के लिए गजट नम्बर एस.ओ. 1007 (ई) दिनांक 30 मार्च 2017 द्वारा जारी किया गया।

डी.डब्ल्यू.आर.बी. 123 को समन्वित जौ जाँचों में जाँचक किस्मों डी.डब्ल्यू. आर.यू.बी. 52, डी.डब्ल्यू.आर.बी. 92, डी.डब्ल्यू.आर.बी. 101, आर.डी. 2849 एवं बी.एच. 902 (छःपंक्ति) के साथ जाँचा गया। क्रमशः तीन वर्षों के 26 ट्रायल के आधार पर डी.डब्ल्यू.आर.बी. 123 की औसत उपज 48.7 कु./है. पाई गई। औसत उपज के आधार पर डी.डब्ल्यू.आर.बी. 123 की अन्य जाँचक किस्मों डी.डब्ल्यू.आर.यू.बी. 52 (7.5%), डी.डब्ल्यू.आर.बी. 92 (8%), डी.डब्ल्यू.आर.बी. 101 (0.8%) एवं आर.डी. 2849 (4.6%) की अपेक्षा अधिक दाना उपज प्राप्त हुई। शस्य परीक्षणों में भी डी.डब्ल्यू.आर.बी. 123 की दाना उपज 49 कु./है. प्राप्त हुई है। जो कि जाँचक किस्मों डी.डब्ल्यू. आर.बी. 52 एवं आर.डी. 2849 से क्रमशः 2.4% एवं 4.09% अधिक थी। इसके अतिरिक्त 60 कि.ग्रा./है. एवं 120 कि.ग्रा./है. नत्रजन के परीक्षण जांचों में डी.डब्ल्यू.आर.बी. 123 की दाना उपज अन्य जाँचक किस्मों से बेहतर पाई गई।

पादप रोग परीक्षणों में कृत्रिम एवं नैसर्गिक अवस्थाओं में डी.डब्ल्यू. आर.बी. 123 पीला एवं भूरा रतुआ और पर्ण झुलसा के प्रति प्रतिरोधी पाई गई। कृत्रिम रोग जाँचों में डी.डब्ल्यू.आर.बी. 123 की भूरा रतुआ के लिए रिएक्शन 20 एस दर्शायी गई जबकि जाँचक किस्मों डी. डब्ल्यू.आर.यू.बी. 52, आर.डी. 2849 एवं डी.डब्ल्यू.आर.बी. 101 द्वारा 40 एस रिएक्शन देखी गई। डी.डब्ल्यू.आर.बी. 123, पौध अवस्था प्रतिरोधी जाँचों में जौ की बहुतायत रेस 57 (050) के प्रति प्रतिरोधी पाई गई।

डी.डब्ल्यू.आर.बी. 123 का पादप तना सीधे प्रकार का है एवं इसकी बाली लगभग 88 दिनों में निकलना शुरू होती है। इस किस्म के 1000 दानों का वजन लगभग 48.6 ग्राम है एवं परिपक्वता अवधि 130 दिनों के करीब है।

माल्ट गुणवत्ता जाँचों में डी.डब्ल्यू.आर.बी. 123 का स्कोर (57/90) अन्य जाँचक किस्मों की अपेक्षा अधिक पाया गया। डी.डब्ल्यू.आर.बी. 123 में मोटे दानों का प्रतिशत (91.1%), पतले दानों का प्रतिशत (1.8%), 1000 दाना वजन (48.6 ग्राम) एवं हेक्टोलीटर वजन (64.1 कि.ग्रा./हेक्टोलीटर) पाया गया। डी.डब्ल्यू.आर.बी. 123 के माल्ट कारकों में डाईस्टेटिक पावर (101.2°एल) एवं वर्ट फिल्ट्रेशन रेट (271 मी.ली./घंटा) पाई गई। डी.डब्ल्यू.आर.बी. 123 की गुणवत्ता जाँचक किस्मों, डी.डब्ल्यू. आर.बी. 101 एवं आर.डी. 2849 से गुणवत्ता कारकों क्रमशः मोटे दाने, पतले दाने, हजार दाना वजन, जर्मीनेटिव एनर्जी, डाईस्टेटिक पावर, वर्ट फिल्ट्रेशन रेट एवं कोलवेक इंडेक्स से अच्छी पाई गई।

डी.डब्ल्यू.आर.बी. 123 द्विपंक्ति माल्ट जौ

बारानी क्षेत्रों के लिए वरदान है जौ की खेती

लोकेन्द्र कुमार, जोगेन्द्र सिंह, अनिल खिप्पल, विष्णु कुमार, संजय कुमार सिंह,
अमित शर्मा, राज कुमार एवं अजित सिंह खरब

भा.कृ.अनु.प – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसन्धान संस्थान, करनाल

जौ पोएसी अथवा घास कुल का एक वर्षीय पौधा है तथा फसल के तौर पर इसकी गिनती विश्व की प्राचीनतम फसलों में की जाती है । पूरे विश्व में जौ ही एक मात्र ऐसी फसल है जो दुनिया के हर कोने में सफलतापूर्वक उगाई जाती है। संसार के विभिन्न देशों में इसकी खेती आज से लगभग 10000 वर्ष पूर्व से होती आ रही है । विश्व में गेहूँ, चावल एवं मक्का के बाद जौ का चौथा स्थान है तथा यह विश्व के कुल खाद्यान्न उत्पादन में लगभग 7 प्रतिशत का योगदान देता है। वर्ष 2014–15 के दौरान पूरे विश्व में लगभग 141 मिलियन टन जौ उत्पादन हुआ। जौउत्पादक राष्ट्रों में रूस प्रथम स्थान पर है तथा इसके बाद फ्रांस, जर्मनी, यूक्रेन, आस्ट्रेलिया,कनाडा, तुर्की, अमेरिका, अर्जेटिना, भारत, आदि देशों का स्थान है । भारतवर्ष में जौ की खेती मुख्यतः राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर आदि राज्यों में होती है। वर्ष 2016–17 के दौरान भारत में जौ का कुल क्षेत्रफल 0.69 मिलियन हैक्टर, कुल उत्पादन 1.79 मिलियन टन और उत्पादकता 25.80 कु. प्रति हैक्टर थी। मानव स्वास्थ्य के लिए बेहद उपयोगी इस खाद्यान्न फसल की सबसे बड़ी खूबी यह है कि इसका पौधा लवण एवं सूखा सहिष्णु है। अतः इसकी खेती सभी तरह की भूमियों में कम पानी, सिमित खाद एवं उर्वरक के साथ सफलतापूर्वक की जा सकती है। बदलते जलवायु परिवर्तन का इस फसल की बढ़वार एवं उत्पादन पर कोई खास फर्क नहीं पड़ता है। यानि जलवायु की कठिन परिस्थितियों में भी इसे सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

जौ का महत्व : जौ का हमारे जीवन में विशेष महत्व है। इसका उपयोग धार्मिक कार्यों से लेकर खाद्य एवं विभिन्न औद्योगिक उत्पादों के निर्माण में वर्षों से होता आ रहा है।

1. धार्मिक महत्व : हमारे देश में जौ का विशेष धार्मिक महत्व है। चैत्र मास से हिन्दू नववर्ष के प्रारम्भ होने के साथ ही बड़े नवरात्र शुरू होते हैं। ये नौ दिन माता की आराधना के लिए महत्वपूर्ण माने जाते हैं। नवरात्रि में देवी की उपासना से जुड़ी अनेक मान्यताएं हैं और उन्हीं में से एक है नवरात्रि पर घर में जवारे या जौ लगाने की। नवरात्रि में ज्वारे इसलिए लगाते हैं क्योंकि माना जाता है कि जब सृष्टि की शुरूआत हुई थी तो पहली फसल जौ ही थी। जौ को एक अत्यंत पवित्र अन्न माना जाता है तथा इसकी इस पवित्रता के कारण ही हवन तथा अन्य धार्मिक कार्यों में इसको विशेष महत्व दिया जाता है। बसंत ऋतु में पकने वाली पहली फसल जौ ही होती है।

2. आर्थिक महत्व : जौ का हमारे जीवन में विशेष महत्व है तथा विभिन्न रूपों में यह हमारी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

चारा एवं पशु आहार के रूप में : दाने के रूप में जौ का प्रयोग आमतौर पर दुधारू पशुओं (गाय, भैंस) तथा भारी काम करने वाले पशुओं (जैसे बैल, भैंसा, घोड़ा आदि) की खुराक के लिए किया जाता है। इसके अलावा इसके वानस्पतिक भागों का इस्तेमाल हरे व सूखे चारे के रूप में किया जाता है।

घरेलू भोजन के रूप में : प्राचीन काल से ही मनुष्य जौ का उपयोग अपना पेट भरने के लिए करता आ रहा है। जौ का इस्तेमाल विश्व के अलग–अलग देशों में अलग–अलग भोज्य पदार्थों के रूप में किया जाता है। खाद्य पदार्थ के रूप में हमारे देश में जौ का प्रयोग मुख्यतः दलिया, रोटी तथा सत्तू के रूप में किया जाता है। जौ का दलिया एक शक्तिवर्धक एवं सुपाच्य आहार माना जाता है तथा यह मरीजों के लिए सर्वोतम आहार है। हमारे ऋषि मुनियों का भी अनंतकाल से यह एक पंसदीदा भोजन रहा है। जौ का सत्तू गर्मियों में एक पसंदीदा पेय है। ठंडी तासीर होने के कारण यह गरमी से राहत दिलाता है। सम्भ्रांत वर्ग में आजकल जौ के बिस्कुट भी काफी लोकप्रिय हो रहे हैं।

औद्योगिक उत्पादों के निर्माण में : अगर हम आज जौ को एक औद्योगिक फसल कहें तो इसमें कोई अतिष्योक्ति नहीं होगी क्योंकि आज के युग में काफी बड़े स्तर पर इसका उपयोग अनेक औद्योगिक उत्पाद बनाने में हो रहा है। उद्योगों में जौ का सबसे ज्यादा प्रयोग माल्ट बनाने में किया जाता है जिससे विलासिता के कई पेय पदार्थों (बीयर, व्हिस्की इत्यादि) का निर्माण किया जाता है। इसी माल्ट से हॉर्लिक्स, बेबी फूड, माल्टोवा टॉनिक, दूध मिश्रित पेय, बियर शैम्पू इत्यादि उत्पाद बखूबी बनाए जाते हैं।

औषधीय सामग्री के रूप में : जौ में बीटा ग्लूकॉन नामक एक फायदेमंद रसायन पाया जाता है यह रसायन मानव रक्त में कॉलेस्ट्राल स्तर को कम करता है। इसके सेवन से पेट सम्बंधी गड़बड़ी तथा गुर्दों में पथरी की समस्या दूर होती है। गेहूँ के साथ जौ और चने को बराबर मात्रा में मिला कर आटे की रोटी खाने से मोटापा कम होता है। जौ की तासीर ठंडी होने के कारण यह गर्मी से राहत दिलाता है तथा रक्तचाप, मधुमेह, पथरी वगैरह में फायदा पहुँचाता है। जौ के आटे में धनिया की हरी पत्तियों का रस मिला कर लगाने से कंठमाला ठीक हो जाती है। इसी तरह दूध व घी के साथ जौ का दलिया लगातार खाने से मूत्राशय तथा मधुमेह सम्बंधी दिक्कतें दूर हो जाती हैं। छिलका निकली जौ को भूनकर व पीसकर शहद व पानी के साथ सत्तू बना कर कुछ दिनों तक लगातार खाने से मधुमेह की बीमारी में फायदा होता है। थोड़ा सा जौ कूटकर पानी में भिगो कर कुछ समय बाद पानी निथारकर उसे गरम करके उसके कुल्ले करने से गले की सूजन दूर हो जाती है। जौ को पानी में भिगोकर, कूटकर, छिलका निकाल कर उसे दूध में खीर की तरह पकाकर खाने से शरीर तंदुरूस्त होता है। जौ का पानी पीने से पथरी निकल जाती है, इसलिए पथरी के रोगियों को जौ से बने पदार्थों का भरपूर इस्तेमाल करना चाहिए। जौ की राख को शहद के साथ चाटने से खांसी ठीक हो जाती है। जौ के बारीक पीसे आटे में अंजीर का रस मिलाकर सूजन वाली जगह पर लगाने से फायदा होता है।

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल में दिनांक 7–8 अप्रैल, 2017 के दौरान आयोजित संस्थान की 'अनुसंधान सलाहकार समिति' की 21वीं बैठक में उपस्थित सभी वैज्ञानिकगण

लेखकों के लिए दिशा–निर्देश

गेहूँ एवं जौ संदेश में छपने हेतु लोकप्रिय लेख साफ–साफ हस्तलिखित या डबल स्पेसिंग में टाईप किए हुए (तलिका, आकृति, फोटोग्राफ सहित) दो पृष्ठों से अधिक नही होने चाहिएं। लेख में लेखकों का पूरा नाम, पता व ई–मेल अवश्य लिखें। लेखकों से निवेदन है कि वे अपने लोकप्रिय लेख 31 मई तक पहले अंक (जनवरी–जून) के लिए एवं 30 नवम्बर तक दूसरे अंक (जुलोई–दिसम्बर) के लिए भेजें। कृपया एक लेख में 4–5 से अधिक लेखकों का नाम न दें।

सम्पादक मंडल
सत्यवीर सिंह, अनुज कुमार, आर. के. गुप्ता एवं जी. पी. सिंह
तकनीकी सहायता : जे.के पाण्डेय
छायाचित्र : राजेन्द्र कुमार शर्मा

बुक पोस्ट
छः माही मुद्रित सामग्री

सेवा में,

.....

.....

प्रेषक
भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान
पोस्ट बॉक्स 158, अग्रसेन मार्ग,
करनाल – 132 001 (हरियाणा), भारत

.....

निदेशक, भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गेहूँ एवं जो अनुंसधान संस्थान, करनाल द्वारा प्रकाशित
किसान सहायता नम्बर (टोल फ्री) : 1800 180 1891
वेबसाइट : iiwbr.icar.gov.in